आधि–व्याधि–उपाधि

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीवन में संतुलन बनाना आवश्यक होता है बिना संतुलन के जीवन की डोर टूट सकती है। आधि मानसिक बिमारी है, व्याधि शरीर से जुड़ी हुई है और उपाधि भावनात्मक है। क्रोध, मान, माया, लोभ उपाधि है। नकारात्मक भाव, नकारात्मक सोच उपाधि है। अप्रत्याशित रूप से बाहर से आ जाने वाली परेशानी का नाम उपाधि है जैसे हम यहां बैठे हुए हैं और कोई हमें पत्थर मार दें तो वह उपाधि है, कोई हमें बुलाने आ जाए तो भी यह उपाधि है। उपाधि बाहर से आती है, भीतर से नहीं जन्म लेती। जगत के सारे लोग यहां तक कि साधु–संन्यासी भी इन त्रिविध तापों से जल रहे हैं। निरन्तर समाधिस्थ केवल वे ही लोग हैं जो ज्ञानी हैं। जिन्हें शुद्धात्मा पद प्राप्त है। जो निरन्तर स्वरूप में ही रहते हैं वे प्रत्येक अवस्था में समाधिस्थ हैं। वे केवल ज्ञाता दृष्टा हैं।

यदि आप किसी के घर में प्रविष्ट हुए तो मन में एक प्रकार की फड़फड़ाहट रहेगी। मन में यह विचार आएगा कि कोई हमें बाहर न निकाल दें। यदि आप अपने घर में ही बैंठे हैं तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी। अपने घर में रहने से शान्ति प्राप्त होती है। इसका मतलब यह है कि यदि हम आत्म में रहते हैं तो हमें कोई डर नहीं। यह शरीर भी अपना नहीं है। आत्मा और शरीर का योग अज्ञान का परिणाम है। हम स्वयं तो क्षेत्रज्ञ पुरुष होकर भ्रान्तिवश पराये क्षेत्र में क्षेत्राकार हो गये हैं, पर के स्वामी बन बैठे और भोक्ता हो गये हैं। फलस्वरूप निरन्तर चिन्ता, उपाधि, आकुलता, व्याकुलता बनी रहती है।

जल के बाहर मछली को निकाल देने से वह तड़पती रहती है और धीरे–धीरे उसका प्राणान्त हो जाता है। ऐसे ही आत्मा और शरीर की भी दशा है। आत्मा शरीर के अन्दर मुक्त होने के लिए तड़पता रहता है। लेकिन जब तक कार्मण शरीर से इसका संयोग रहता है यह उससे बंधा रहता है। आयुष्य कर्म के पूर्ण होने पर आत्मा शरीर से निकलकर जैसा कर्म किया रहता

है वैसा दूसरा शरीर प्राप्त करता है। आत्मा के स्तर पर जीवों में कोई भेद नहीं है। जिसका जैसा कर्म रहता है वैसा उसे फल प्राप्त होता है। जन्म और कर्म की परम्परा अनादि है।

पूंजीपति सेठ लोग आराम से सोते हैं किन्तु उन्हें अच्छी नींद नहीं आती। कभी इस करवट कभी उस करवट बदलते हुए पूरी रात बीत जाती है। उनका मन अशान्त रहता है। वे चैन की नींद नहीं ले पाते। वे उपाधियों से घिरे रहते हैं। जो जितना अधिक जाल बुनता है उसके लिए उतना कठिन बंधन तैयार रहता है। पूरी जिन्दगीभर अपने बिछाये हुए जाल में फंसकर उसका प्राणान्त हो जाता है। जिन्दगी में उसे सुख नहीं मिल पाता है। जहां आधि–व्याधि और उपाधि है वहां दुःख है। दुःखों से मुक्ति के लिए समभाव का जीवन, संतोष का जीवन जीना चाहिए।

संतोष हृदय का वह भाव है जिसके जागरण से व्यक्ति परमधन की प्राप्ति का अनुभव करता है। उसे ऐसा लगने लगता है कि उसे सब कुछ मिल गया और अब कुछ भी पाना शेष नहीं है। लोग भाव में अभाव महसूस करते हैं; किन्तु संतोषी व्यक्ति अभाव में भाव महसूस करता है। उसके पास कुछ नहीं है या अल्प है फिर भी वह परम धन की अनुभूति करता है और इस धन के मिल जाने पर अन्य सारे धन उसके लिए धूल के समान हो जाते हैं। संतुष्टि परमं धनम् अर्थात् संतोष ही परम धन है। प्रायः सुख की आकांक्षा सभी को होती है। पतंगा भी सुख चाहता है और उसी सुख की चाहत में अपने आप को अग्नि में समर्पित कर जाता है, अर्थात् अपना प्राणान्त कर लेता है।

जीवन में संतोष आ जाने के बाद फिर किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रहती है। उत्तमोत्तम सुख मिल जाने से कोई दूसरा सुख शेष नहीं रह जाता है। इच्छाएं कभी व्यक्ति को एक क्षण के लिए भी शांति से बैठने नहीं देतीं। मनुष्य एक इच्छा की पूर्ति करता है तो दूसरी इच्छा तैयार, दूसरी इच्छा की पूर्ति हुई कि तीसरी इच्छा तैयार रहती है। इस प्रकार इच्छाओं के जाल में मकड़ी की तरह उलझकर वह अपना अंत भी कर लेता है। फिर, ऐसी इच्छाओं से क्या लाभ जो व्यक्ति को न सुख से जीने दे और न चैन से मरने दे। गीता में कहा गया है–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्तमेव भूयः एवाभिवर्तते।।

कामनाओं की पूर्ति से कभी कामनाएं शांत नहीं होतीं। उसी तरह जिस तरह अग्नि में घी डालने से कभी अग्नि शांत नहीं होती। शांति जीवन की उस अनुभूति को कहते हैं, जहां सारे सुख समाहित होते हैं, मन स्थिर रहता है, इन्द्रियां बुद्धि के वशीभूत होती हैं।

गीता में कहा गया है कि– जैसे सब तरफ से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए उसमें समा जाते हैं, वैसे ही स्थिर बुद्धि पुरुष के प्रति सम्पूर्ण भोग किसी प्रकार का विचार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं। भोगों को न चाहने वाला पुरुष परमशांति को प्राप्त होता है। गीता में कहा गया है– जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकारहित और स्पृहारहित होता है वह शांति को प्राप्त करता है। संतोष में परम सुख ह